

भक्ति आंदोलन और शंकरदेव

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

भक्ति आंदोलन के संदर्भ में हम जिस भक्ति की बात करते हैं, वह वस्तुतः भागवत भक्ति है। भागवत धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ ही भक्ति आंदोलन का प्रारंभ हुआ। वह यह भागवत भक्ति थी जो लोकोन्मुख थी। सामान्य जन को अपने में समेट लेने की जिसमें अद्भुत क्षमता थी। जिसकी भाषा लोकोन्मुख या जन-भाषा थी। कालांतर में यह भावना केवल वैष्णव भक्ति तक सीमित नहीं रही। उसमें शैव, शाक्त के साथ बौद्ध तथा जैन भी जुड़े तथा उससे प्रभावित भी हुए। भक्ति आंदोलन (13 वीं से 16वीं शताब्दी) 400 वर्षों तक अपने चरम पर था। जिस भक्ति ने आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया, वस्तुतः उसकी शुरुआत दक्षिण से हुई। आलवार दक्षिण भारत के अत्यंत प्रतिष्ठित वैष्णव संत हैं। इनका समय 200 ईसवी से 900 ईसवी है। आलवारों में सरोयोगिन, महायोगिन, भूत योगिन, तथा भक्ति सार प्राचीन हैं। चर्चित आलवारों में शठकोप, मधुरकवि, कुलशेखर पेरुमाल, विष्णु चित्तम और गोदा बाद के आलवार हैं। इन सभी आलवारों का संबंध तमिल प्रदेश से है। आलवारों को विशिष्ट बतलाते हुए कहा गया है कि जो ईश्वर ज्ञान के मूल तत्व तक पहुँचा है तथा उसी के ध्यान में मग्न रहता है, वही आलवार है।

आलवारों में विभिन्न प्रकार की जातियाँ थीं-जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र तथा उस समय और भी निम्न कही जाने वाली जातियों के लोग थे। आलवारों की रचनाएं 'नालआयिर दिव्य प्रबंधम्' में संगृहीत हैं। इन्हें तमिल प्रदेश में वेद के समकक्ष माना गया। इनके पद्य मंदिरों, विवाह उत्सव तथा अन्य प्रसंगों में गाए जाते हैं। इनकी महिमा यह है कि यह यज्ञ और अनुष्ठान में वैदिक मंत्रों के समकक्ष उच्चरित किए जाते हैं। आलवारों ने भक्ति के क्षेत्र में जाति को नहीं माना, यही भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषता है। 'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान' वाली पंक्ति का प्रारंभिक रूप आलवारों के यहाँ दिखता है।

"नाम्मालवार शूद्रे कुल में उत्पन्न हुआ था। इसकी रचना सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। इसने 100 पद्यों में तिरुवृत्तम, सात पद्यों में तिरुवाशिरियम, 87 पद्यों में तिरुवंतादि और 1102 पद्यों में तिरुवायमोडि लिखे हैं। यह सदैव ध्यान में मग्न रहता था।

इसके शिष्य मधुर कवि ने इसे विष्णु का अवतार माना है। कुलशेखर राम का भक्त था। इसके मुख्य ग्रंथ का नाम पेरुमाल तिरुमोषि है। आंडाल कृष्ण की भक्त थीं और अपने को गोपी समझती थीं। देवदासी प्रथा के अनुसार वह श्रीरंगम् के देवता रंगनाथ को समर्पित की गई थीं और उन्हीं को अपना पति समझती थीं। उसके मुख्य ग्रंथ तिरुपावई और नाच्चियार तिरुभोलि हैं।¹ आलवारों ने जिस भक्ति पद्धति का प्रचार किया उसमें अलौकिक उपलब्धियों को तुच्छ माना गया है। वह पूजा उपादानों की तुलना में भाव की प्रधानता मानी गई। प्रभु का अनुग्रह और दास्य भाव भी इनकी भक्ति की प्रमुख विशेषता है। आलवारों के पश्चात् दक्षिण भारत में भक्ति का प्रचार आचार्यों ने किया। यह आचार्य भी 'प्रबंधम्' से प्रभावित हैं। इसमें

प्रमुख रघुनाथाचार्य या नाथमुनि थे। आचार्यों की भक्ति में वैचारिक प्रौढ़ता प्रदान की। आलवारों की भक्ति में निश्चल हृदय की अभिव्यक्ति थी। "इन आचार्यों के विविध ग्रंथों में मस्तिष्क-पक्ष की भी प्रौढ़ता दीख पड़ी।

इन्होंने मीमांसकों के कोरे कर्मकांड तथा शंकराद्वैतवादियों के ज्ञानकांड का अनेक युक्तियों के साथ खंडन किया और अपने भक्ति ज्ञान के अनुसार प्रसिद्ध वेदांत ग्रंथों का तात्पर्य भी निर्धारित किया। तदनुसार इन्होंने स्मार्तों द्वारा प्रचलित किए गए एक से अधिक देवताओं की पूजन प्रणाली को अस्वीकार कर एकमात्र विष्णु भगवान की आराधना का प्रचार किया और उसके लिए तीन वर्गों के अतिरिक्त शूद्रों को भी योग्य ठहराया। शूद्र जैसे श्रेणी वालों को विशेषकर 'प्रपत्ति' की व्यवस्था दे दी, जिसका मुख्य अभिप्राय अपने को भगवान की शरण में समर्पित कर उन्हीं की दया मात्र पर पूर्ण भरोसा करना रहा।"²

आलवारों के पश्चात निंबार्काचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य तथा चैतन्य महाप्रभु ने विभिन्न प्रांतों में अपनी भक्ति पद्धति का प्रचार किया। रामानुजाचार्य की भांति इन आचार्यों ने भी अपने संप्रदाय खड़े किए। दक्षिण भारत के आचार्यों ने उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार किया। इन्हीं आचार्यों की परंपरा हिंदी साहित्य में पल्लवित हुई। निंबार्काचार्य दक्षिण भारत के थे। इन्होंने द्वैत-अद्वैत सिद्धांत के आधार पर राधा-कृष्ण की भक्ति प्रतिपादित की। इन्होंने अपनी कर्मभूमि ब्रजमंडल को बनाया। वृंदावन, गोवर्धन और नीमगाँव आदि स्थानों पर घूम-घूमकर अपने सिद्धांतों का प्रचार किया। इस संप्रदाय के प्रमुख कवि श्रीमद् हरि व्यासदेव और परशुराम देव हुए। आचार्य वल्लभ भी दक्षिणात्य थे। इनका संबंध काशी से भी था। इनका मत शुद्धाद्वैत और आचार्य पक्ष पुष्टिमार्ग कहलाता है। वल्लभाचार्य ने ब्रज मंडल में कृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित किया। पुष्टिमार्गीय भक्ति में किसी प्रकार के साधन की आवश्यकता नहीं होती। यह रागानुराग भक्ति है। वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित पुष्टिमार्ग का पालन करने वाले हिंदी के कवि अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन आठ कवियों में चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और चार गोस्वामी विठ्ठलनाथ के। वल्लभाचार्य के शिष्य थे कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास। विठ्ठलनाथ के शिष्य थे - गोविंद स्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार करने वालों में रामानंद का नाम सर्वोपरि है। इनकी प्रसिद्ध पंक्ति है - 'भगति द्राविणी द्राविड ऊपजी, लाए रामानन्द ।'

भक्ति के क्षेत्र में रामानंद ने सबको समान माना। उन्होंने घोषणा की- 'जाति-पाति पूछे नहिं कोई। हरि को भजै, सो हरि का होई।' तथा 'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणों मताः।' इनके शिष्यों में विभिन्न जाति-वर्णों के लोग थे। भक्तमाल में रामानंद के बारह शिष्यों का वर्णन है। इनके शिष्यों में कबीर जुलाहा, रैदास चमार, धन्ना जाट, सेन नाई तथा पीपा क्षत्रिय थे। अन्य शिष्य अनंतानंद, सुखानंद, नरहर्यानंद, भावानंद तथा पद्मावती हैं। रामानंद के समकालीन मौलाना रशीदुद्दीन ने अपने ग्रंथ 'ताजकीर तुल फुकरा' में रामानंद के शिष्यों की संख्या 500 से भी अधिक बतायी है। द्वादश शिष्यों का विशेष कृपा पात्र बतलाया है। रामानंद ने भक्ति के क्षेत्र में जो कुछ भी किया वह तत्कालीन समाज के लिए महत्वपूर्ण घटना थी। रामानंद और उनके शिष्यों ने हिंदू समाज के बहुत बड़े हिस्से को टूटने से बचा लिया।

समाज की कथित छोटी जातियों में उत्पन्न होने के बावजूद इनका स्वाभिमान काफी ऊँचा था। इन संतों ने भारतीय दर्शन के मूल तत्व को अपनी सीधी सपाट वाणी में अपने पेशे से युक्त शब्दों के द्वारा दैनंदिन चर्या के कामों में आने वाले शब्दों से उपमा, उपमेय ग्रहण कर सर्वजन के लिए सुलभ करा दिया। यह संत काव्यशास्त्र के पंडित नहीं थे। इन्होंने कभी काव्य शिक्षा के ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया था, लेकिन काव्य रचना के लिए इनमें प्रतिभा थी। अपनी बात को सामान्यजन तक संप्रेषित करने की कला में सिद्धहस्त थे।

रामानंद के शिष्यों में संत रैदास जब कहते हैं कि - जाति ते कोई पद नहीं पहुंचा, तो उनके भीतर का स्वाभिमान बोलता है। रैदास ने कभी जाति नहीं छुपाई व आजीवन छुआ छूत के विरुद्ध संघर्षरत रहे। वह अपने पदों के अंत में कह रविदास चमारा की घोषणा करते हुए पाखंड का पर्दाफाश करते हैं। रैदास हिंदू या मुसलमान के द्वारा समाज में किए जा रहे पाखंड और अपमान वृत्ति को देखकर कभी विचलित नहीं हुए। उनका शिष्य होने में सवर्णों ने भी गर्व की अनुभूति की। 13वीं से 16वीं सदी तक जो भक्ति संपूर्ण भारत में व्याप्त हुई, उसमें सर्व प्रमुख बात है- समानता, स्वाभिमान, देसी याद, जनभाषा तथा श्रमजीवी साधुता। वीर संप्रदाय या लिंगायत संप्रदाय के प्रवर्तक सर्वेश्वर, थे। यह कर्नाटक के थे बसवेश्वर ने 'अनुभव मंटप' की स्थापना की। अनुभवी पुरुष केवल आत्मचिंतन नहीं करता था। वह जीवित गोपाल जन के लिए शारीरिक परिश्रम भी करता था। इसे वे ईश्वर अर्पित कर्म समझते थे। संत लल्ला या लल्लेश्वरी को मेहतर जाति का कहा जाता है। इन्होंने जो कुछ भी कहा, वह कश्मीरी भाषा में है। "संत लल्लेश्वरी ने कश्मीर के संरक्षक संत patron Saint of Kashmir शेख नूरुद्दीन अथवा नंद ऋषि (साल 1434 से 1495) को भी प्रभावित किया।"³

भक्ति आंदोलन की बड़ी उपलब्धि महिला रचनाकारों को उपस्थित करना है। लल्लेश्वरी के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण महिला लेखिका हैं जो इस समय दिखायी पड़ती हैं। संत चरणदास के शिष्यों की संख्या 52 थी। उनमें इनकी दो प्रमुख शिक्षिकाएं सहजोबाई और दयाबाई भी थीं। मीराबाई के नाम से पूरा देश परिचित था।

भक्ति आंदोलन में मुस्लिम संतों की भूमिका उल्लेखनीय है। पहली बार इतनी बड़ी संख्या में मुसलमान संत प्रकाश में आए। इन संतों ने अल्लाह और ईश्वर की एकता को स्थापित किया। 'दादूपंथ' ने बड़ी मात्रा में निर्गुण संतों को अपने साथ जोड़ा। दादू का जन्म-स्थान गुजरात का अहमदाबाद है। इनकी जाति धुनिया थी। इसका मुख्य कार्य स्थान राजस्थान था। इनका संप्रदाय परब्रह्म संप्रदाय कहलाया।

दादू के शिष्यों में गरीबदास, रज्जब और सुंदरदास प्रमुख हैं। इनके विद्वान शिष्यों ने ग्रंथों को ग्रंथ ईद करने की नयी पद्धति अपनाई। इस पंथ में हिंदू और मुसलमान दोनों जुड़े। हिंदू और मुस्लिम राज परिवारों ने भी दादूपंथ के प्रति श्रद्धा व्यक्त की।

भक्तिकाल के तमाम संत संप्रदायों का आलोड़न- विलोड़न करने के पश्चात यह बात ध्यान में आती है कि संतों ने 'नामजप' को बहुत अधिक महत्व दिया। कीर्तन पर बल दिया। इनमें से अधिकांश मंदिर और मस्जिद के विरोधी थे। इसके बावजूद वे 'नाम महिमा' का प्रतिपादन करते थे। सत्संग, कीर्तन, भजन इनकी साधना का अंग था।।

इन्होंने गाने-बजाने का अलग यंत्र विकसित किया। भक्ति आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि बहुत बड़ी मात्रा में छोटी कहीं जाने वाली जातियों से संतों-भक्तों का आगमन हुआ। इनके भीतर वही स्वाभिमान, निष्ठा और भावना। दिखलायी पड़ती है, जो शब्द कहे जाने वाले संतों-भक्तों के यहाँ हैं, यह कुछ अधिक ही स्वाभिमानी थे। निर्गुण संतों में श्रमजीवी साधु थे। यह अपने श्रम की रोटी खाते थे। कबीर कपड़ा बुनते थे। रैदास जूते बनाते थे। सेन नाई थे।

भक्ति आंदोलन ने जनभाषा को अपनाया, जो संत पढ़े-लिखे नहीं, उन्होंने तो जनभाषा में लिखा है, साथ ही संस्कृत के प्रकांड पंडित कवियों ने भी जनभाषा में ही लिखा। तुलसीदास ने घोषणा की

'कीरति भनीति भूति भल सोई।

सुरसरि सम सबकर हित होई।'

संस्कृत के विद्वान होते हुए भी तुलसीदास ने अवधी और ब्रजभाषा में लिखा। उत्तर भारत में जो कार्य रामानंद ने किया, वही कार्य वृहत्तर असम में शंकरदेव ने किया। शंकरदेव ने भक्ति के क्षेत्र में सबको समान प्रवेश दिया। शंकरदेव की शिष्य परंपरा में बड़े-बड़े भक्त, समाज सुधारक, कवि और नाटककार उत्पन्न हुए। शंकरदेव की छत्रछाया, आलोक और नेतृत्व में वैष्णव भक्ति असम में फैली। शंकरदेव और रामानंद की तुलना करते हुए प्रसिद्ध इतिहासकार महेश्वर नियोग ने लिखा है "it was Ramananda of Northern India (1299-1410), who adopted the medium of the language of the common people for his teaching and gave it the dignity of a classical tongue. sankardev also adopted the effective means of forgetting the gospel of his faith through Assamese. the the the bhagwantapur formed the mainstay of his cult. This work he studied slowly and rendered portions of it into simple Assamese verses, songs and dramas, so that the teaching might appeal to the the commonality."⁴

शंकरदेव संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत के महत्वपूर्ण संत कवि हैं। शंकरदेव का पूरा जीवन संघर्षों में बीता। इनका जन्म सन् 1449 ई को नवगाँव जिले के बरदोवा नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम कुसुमवर भुइयां तथा माता का नाम सत्यसंधा था। इनके पिता जागीरदार व कुशल संगीतज्ञ थे। इनके पिता के राज्य काल में कछारियों ने आक्रमण किया। उनके आगमन से बचने के लिए शंकरदेव के पिता को जंगल में छिपना पड़ा था। उनका जन्म भुइयाँ राज्य कुल में हुआ था। जब शंकरदेव छोटे थे, तभी इनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। 12 वर्ष की अवस्था में इन्हें महेंद्र कंदली की पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा

गया। प्रारंभ में तो विद्यालय से उनका मन उचटा, लेकिन सात आठ वर्षों में उन्होंने वेद, उपनिषद, पुराण तंत्र तथा योग आदि का अध्ययन कर लिया। 21 वर्ष की अवस्था में विद्या अध्ययन के पश्चात घर लौटकर अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में कुछ दिनों तक इन्होंने राज का संचालन भी किया। इनका विवाह सूर्यवती नाम की स्त्री से हुआ इन्हें एक पुत्री भी हुई। पुत्री के जन्म के कुछ समय बाद ही इनका मन सांसारिक जीवन से उचट गया। उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह हरी नामक एक युवक से करने के पश्चात 32 वर्ष की अवस्था में सन् 1481 ई. में गृह त्याग दिया। उन्होंने तीर्थाटन करने का सोचा। वे तीर्थाटन पर निकल पड़े। उनके साथ 17 लोगों की एक टोली थी। इस टोली में इनके गुरु महेंद्र कंदली भी थे। इन्होंने वाराणसी, प्रयाग, मथुरा, वृंदावन, गोकुल, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, बद्रीकाश्रम, जगन्नाथ पूरी, रामेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा की। अपनी तीर्थयात्रा के दौरान यह सबसे अधिक जगन्नाथपुरी में रुके। इस तीर्थयात्रा से इनका अनुभव और व्यापक हुआ। शंकरदेव ने भारत की विविधता और इस में व्याप्त एकता का अनुभव किया। 12 वर्षों तक तीर्थाटन करने के पश्चात सन् 1493 ई. में शंकरदेव अपने घर बरदोवा लौट आये। लौटने पर घर वालों ने उनसे पुनः विवाह करने का आग्रह किया। उस समय उनकी दादी खेरसुती जीवित थी। स्वजनों के आग्रह को स्वीकार करते हुए 48 वर्ष की अवस्था में साल 1497 में शंकरदेव ने कालिका भुईयां की कन्या कालिंदी से पुनः विवाह किया। इससे इन्हें तीन पुत्र रामानंद, कमल लोचन और हरिचरण हुए। रुक्मणी नाम की एक कन्या भी हुई। एक पुत्र कमल लोचन की मृत्यु बचपन में ही हो गयी। विवाह के पश्चात शंकरदेव अपने पैतृक गाँव बरदोवा में ही रहते थे। वहीं पर उन्होंने सन् 1502 ई. में एक छोटा सत्रगृह (देवगृह, जिसे शंकरिया लोग नामघर कहते हैं) स्थापित किया। यहीं पर यह कुछ लोगों के साथ बैठकर सत्संग करते थे, कीर्तन प्रार्थना करते थे। कुछ दिन पश्चात शंकरदेव माजुली पहुंचे। यहाँ पर उनकी भेंट माधवदेव से हुई। माधवदेव ने शंकरदेव का शिष्य होना स्वीकार किया।

माधवदेव उनकी मृत्यु के पश्चात उत्तराधिकारी बने। बाद में शंकरदेव पाटबाँउसी आ गये। ये यहाँ अठारह वर्ष रहे। पाटबाँउसी में उन्हें थोड़ी स्थिरता और शांति मिली। यहाँ पर रहते हुए यह यदा-कदा कोच दरबार भी जाते थे। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनाएँ यहीं लिखीं। नामघर स्थापित किया। अनंत कंदली यही इनके शिष्य बने। पाटबाँउसी से ही सन् 1550 ई. में शंकरदेव ने अपनी दूसरी तीर्थ यात्रा शुरू की थी। इस तीर्थ यात्रा में 120 अनुयायी इनके साथ थे। इस बार यह केवल जगन्नाथपुरी गये। तीर्थ यात्रा से लौटने के पश्चात उन्होंने अपने धर्म प्रचार को गति प्रदान की। इनकी लोकप्रियता से ईर्ष्या कर कुछ लोगों ने कोच राज नरनारायण से इनकी आलोचना की। शंकरदेव को भी बुलाकर दरबार में लाया गया। राजा की आज्ञा अनुसार शंकरदेव ने दरबार में पंडितों से शास्त्रार्थ किया। शंकरदेव विजयी हुए। राजा ने शंकरदेव की श्रेष्ठता को स्वीकार किया। वे इनकी प्रतिभा और भगवत भक्ति से प्रभावित हुए। राजा ने शंकरदेव को राजकीय सम्मान देते हुए उन्हें अपना राजकवि बनाया। राजा शंकरदेव का मित्र बन गया। इस प्रकार शांकरि मत के प्रचार प्रसार की एक बहुत बड़ी बाधा समाप्त हो गई। एक तरह से शांकरि मत अब राज मत बन गया। राजा ने शंकरदेव के लिए निवास स्थान एवं सत्र भी बना दिया। शंकरदेव अधिकतर वहीं रहने लगे। 1568 ईस्वी में उनका स्वर्गवास हो गया।

शंकरदेव ने विपुल साहित्य की रचना की। इनकी जो रचनाएं प्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं, उनके नाम हैं - हरिश्चंद्र उपाख्यान, कीर्तन घोष (कीर्तनों का संकलन), बरगीत, रुक्मिणी हरण, गुणमाला, महा भागवत, भक्ति प्रदीप, भक्ति रत्नाकर, तोटय और भटिया, उत्तराखंड (रामायण), पत्नी प्रसाद, रुक्मिणी हरण (नाट), केली-गोपाल, कालि-दमन, पारिजात हरण और राम विजय

इनकी रचनाओं को रचना तिथि के क्रम में व्यवस्थित करना कठिन कार्य है, क्योंकि रचना तिथि की कोई स्पष्ट सूचना प्राप्त नहीं है। डॉक्टर महेश्वर नेओग तथा प्रोफेसर कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने परिश्रमपूर्वक एक क्रम निर्धारित किया है। प्रोफेसर मागध ने प्रोफेसर नेओग के क्रम में किंचित सुधार करते हुए शंकरदेव की रचनाओं का क्रम इस प्रकार दिया है।

अ) प्रारंभिक - सन् 1516 ईसवी के पूर्व।

(क) भागवत - इतर आधार पर रचित

1. हरिश्चंद्र - उपाख्यान (मार्कंडेय पुराण पर आधारित)
2. भक्ति प्रदीप - गरुड़ पुराण पर आधारित
3. कीर्तन घोषा-उरेशा वर्णन (ब्रह्मपुराण पर आधारित)

(ख) भागवत के आधार पर रचित

4. रुक्मिणी हरण काव्य श्रीधरी व्याख्या से प्रभावित किंतु हरिवंश से किंचित प्रभावित।
5. महा भागवत षष्ठ स्कंध (अथवा आजामिलोपाख्यान) और अष्टम स्कंध (अथवा गजेंद्रोपाख्यान और अमृत मंथन)।
6. गुणमाला - द्वितीय षष्ठ अध्याय।
7. कीर्तन घोषा - आजामिलोपाख्यान (षष्ठ स्कन्ध), प्रहलाद चरित्र (तृतीय, सप्तम स्कंध), हरमोहन, बलि छलन, गजेंद्रोपाख्यान (अष्टम स्कंध), चतुर्विंशति अवतार वर्णन और ध्यान वर्णन।

(ग) बरगीत - संभवतः निम्नांकित पंक्तियों से प्रारंभ होने वाले गीत

1. मन मेरि राम चरणहिं लागु गीत संख्या 28।
2. राम मेरी हृदय पंकज रहिए गीत संख्या 29।

(ब) मध्यवर्ती (अहोम राज्यातर्गत) 1516 ई. से 1543 ई. तक। कवि के जीवन में यह कालखंड सर्वथा अशांति, विरोध और आत्मालोचन का है। फलतः इस समय दो प्रकार की रचनाएँ हुई होंगी। यथा-

(क) भक्ति विरोधियों को लक्ष्य कर लिखे गए ग्रंथ

1. कीर्तन घोषा, पाषंड मर्दन, नामापराध।

2. पत्नी प्रसाद (नाटक)।

(ख) कृष्ण लीला से संबंधित रचनाएं

3. कीर्तन घोषा- शिशु लीला, कालिय-दमन, रास- क्रीडा, कंस वध, गोपी उद्धव संवाद, कुजी-बांछापूरण और अक्रूर-वांछा पूरन। इनके अतिरिक्त ऐसा अनुमान करना असंगत नहीं होगा कि बरगीत की रचना इस अवधि में भी चलती रही होगी।

(स) अंतिम (कोच राज्य अंतर्गत) - 1543 ई. से 1568 ई. तक)

4. कीर्तन घोषा - जरासंध वध, काल यवन वध, मुचकुंद स्तुति, श्यामंतक-हरण, नारदर, कृष्ण दर्शन, विप्र पुत्र-आनयन, दामोदर विप्र आख्यान, देवकी पुत्र आनयन, वेद स्तुति, लीला माला, रुक्मणी प्रेम कला, भृगु परीक्षा, बैकुंठ प्रयाण और भागवत तात्पर्य वर्णन।

5. महा भागवत - प्रथम स्कंध, द्वितीय स्कंध, तृतीय स्कंध, अष्टम स्कंध, नवम स्कंध, दशम स्कंध, एकादश स्कंध और द्वादश स्कंध।

6. गुणमाला प्रथम अध्याय

7. तोटय और भटिमा

8. उत्तरकांड (रामायण) (रामकथा वाल्मीकि रामायण पर आधारित)

9. भक्ति रत्नाकर (विभिन्न शास्त्रों के आधार पर संपादन और व्याख्या)

10. कालिय - दमन नाट

11. केली गोपाल - नाट

12. रुक्मणी हरण - नाट

13. पारिजात हरण - नाट

14. राम विजय - नाट- 1568 ई.

बरगीत की रचना अवधि भी संभवतः यही है। भाषा के आधार पर विचार करें तो ब्रजावली में इनकी कुल 8 कृतियां हैं - काव्य: 1. बरगीत, 2. फुटकर पद्य, तथा सभी नाटक - यथा : 1. पत्नी प्रसाद, 2. कालि दमन, 3. केली गोपाल, 4. रुक्मणी हरण, 5. पारिजात हरण 6. राम विजय।

शंकरदेव मध्यकाल के संभवत एकमात्र ऐसे संत हैं जिन्होंने नाटक लिखा। इनके नाटकों का उद्देश्य भी भक्ति का प्रचार है। इनके प्रत्येक नाटक में असत्य पर सत्य की विजय दिखायी पड़ती है। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से महाभारत, रामायण और भागवत की कथा को जन-जन तक पहुँचाया। इनके नाटकों में सूत्रधार का प्रयोग हुआ है। संस्कृत श्लोक भी है। 'केली गोपाल' नाटक की कथा वस्तु भागवत, विष्णु पुराण और हरिवंश से ली गई है। 'राम विजय नाटक' का आधार वाल्मीकि रामायण है। 'तोटय' में कवि ने विष्णु की स्तुति की है। शंकरदेव के यहाँ दो प्रकार की हैं - देव भटीमा और राज भटीमा। इनके नाटकों में प्रयुक्त भटीमाओं में देव स्तुति है। बर गीत का शाब्दिक अर्थ श्रेष्ठ गीत है। असम में शंकरदेव और माधवदेव रचित भक्ति पर गीत और को बर गीत कहा जाता है। बर गीतों को गाने की कई पद्धतियाँ हैं। इनके प्रतिपाद्य भी भिन्न हैं। प्रोफेसर मागध ने लिखा है "वर्तमान समय में परंपरा भेद और स्थान भेद के आधार पर बरगीतों के गाने की तीन प्रमुख पद्धतियाँ देखी जाती हैं। (क) बरपेटा परंपरा, (ख) बरदोवा परंपरा, (ग) माजुली परंपरा। यह तीनों गायन पद्धतियाँ एक दूसरे से किंचित भिन्न होते हुए भी कई दृष्टियों से अभिन्नसी हैं। गीतों में मुख्यतः कृष्ण वंदना, कृष्ण का रूप सौंदर्य, कवि का दैन्य, ईश्वर लीला की विचित्र अता, नाम महिमा, भक्ति की महत्ता, भक्ति रहित जीव, कवि का आत्म निवेदन, संसार की भंगुरता, मन प्रबोध, गोपी विरह, वंशी प्रभावित आदि से संबंधित वर्णन हैं।"⁵

शंकरदेव संस्कृति के प्रकांड विद्वान थे, लेकिन इन्होंने भी जनभाषा असमिया को अपनाया। स्थान-स्थान पर संस्कृत के श्लोक भी आए हैं। तुलसीदास ने भी संस्कृत में श्लोक लिखा है। इन दोनों कवियों ने यह सिद्ध किया कि संस्कृत का ज्ञान होते हुए भी जन्मभाषा में लिख रहे हैं। शंकरदेव की रचनाएं इनके वैष्णव मत का प्रतिपादन करने के लिए हैं। नाम धर्म का प्रचार इन रचनाओं का उद्देश्य है। शंकरदेव ने कहा कि- 'आउर धर्म कल्पित नाम त परे नाई।' यह भी स्थापित किया कि विभिन्न युगों में धर्म का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है- सत्य युगे पूजे विष्णु धरिया समाधि। महा महा यज्ञ त्रेतायुग आराधि॥ येन गति द्वापरत पूजे भक्ति भावे। कलित कीर्तन करि सबे फल पावे॥

भक्ति आंदोलन से जुड़े सभी संतों ने जाति-पाँति तथा भेदभाव को नकार दिया। कबीर दास ने कहा-

"एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा। एक ही खाक घड़े सब भाँड़े, एक ही सिरजन हारा॥"

संत रविदास ने कहा-

"सबमें हरि है, हरि में से है, हरि अपनो जिन जाना।

साखी नहीं और कोई दूसरा, जाननहारा सयांना ॥"

शंकरदेव भी कहते हैं कि हरि भक्ति में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होता-

"शुना रामायण सबे सभासद यत।

हरि भक्तारि देखा महत्व ॥

तृण वन वृक्ष पशु पतगरो गति

एकोवे न बाछे देखा हरिर भक्ति ॥ "

शंकरदेव ने भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। उन्होंने कहा कि किरात, कछारी, खासी, गारो, मिरि, यवन, कोच, म्लेच्छ, चांडाल सभी कृष्ण सेवक की संगति से पवित्र हो जाते हैं। वह सभी भगवत भक्ति को प्राप्त कर इस संसार से मुक्त होते हैं और बैकुंठ को प्राप्त करते हैं-

"किरात कछारी खासी गारो मिरि

यवन कंक गोवाल

असम मुलुक रजक तुरुक

कुवाच म्लेच्छ चंडाल

आनो यत नर कृष्ण सेवक

संगत पवित्र हय।

भक्ति लभिया संसार तरिया

बैकुंठे सुखे चलय।"

शंकरदेव ने लोकभाषा को अपनाया, लोक तक अपने मत को पहुँचाने के लिए उन्होंने नाटक लिखा। नाटकों का स्वयं मंचन किया। वे अच्छे नाटक निर्देशक भी थे। वादक भी, इन्होंने कई वाद्य यंत्रों का विकास किया। इनके लोक नाटकों से प्रभावित होकर ही असम में भाओना का प्रचलन हुआ। इन नाटकों ने धर्म प्रचार भी किया, समाज सुधार भी किया। इन्होंने जिस 'एकशरणीया' मत का प्रवर्तन किया, वहाँ भागवत पूज्य ग्रंथ बना, वहाँ कोई मूर्ति नहीं है। उनके अनुयायी उनकी मूर्ति पूजा के लिए नहीं रखते। नानक पंथ में गुरुग्रंथ साहिब ने पूजा प्राप्त की। दादूपंथ में भी पुस्तक ही पूजा है। मंदिर में ग्रंथ ही रखा हुआ है। उसी की पूजा होती है। उसी का पाठ होता है। गुरुग्रंथ साहिब में कई संतों की वाणियां हैं। दादूवाणी में दादू की ही रचनाएं हैं।

शंकरदेव के पंथ में भागवत पुराण को पूज्यता प्राप्त है। उनका उद्देश्य वैष्णव भक्ति का प्रचार करना है। ऐसी वैष्णव भक्ति का, जिसमें सबको समानता का अधिकार है। इनके नाटकों का उद्देश्य भी भक्ति और मुक्ति है।

शंकरदेव की विचारधारा के साथ असम का सामान्य जन उत्साह के साथ जुड़ा। इन्होंने बिना भेदभाव किए भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि तत्कालीन बहुत-सी जनजातियाँ ने भी इनकी भक्ति पद्धति को अपनाया। डॉक्टर महेश्वर नियोग ने लिखा है "In the namaghosa, madhav Deva refers to the acceptance of naam Dham by people of Garo Bhutia muslim Islamia home and kachari origin... And old work called Amulya Ratna names together these bhsktas of Assam: Govinda, A Garo, Parmananda parmanand, a Miri; Narahari a Ahom; Jayarama, a Bhutiya; Chandi, a Muslim and Bhattadeva, a Bhramin Candasi (Chand Kahan?) was converted by shankar deva himself. into the faith and he was so much respected within the order that he is counted among the great bhakts, identified with the beads of a Assam Vaisanava rosary. "⁶

शंकरदेव ने अपने कार्य से संपूर्ण पूर्वोत्तर भारत को प्रभावित किया। शंकरदेव न होते तो पूर्वोत्तर का दृश्य कुछ और होता। आज जो वैष्णव भक्ति पूर्वोत्तर में दिखलाई पड़ती है, उसके मूल में शंकरदेव हैं। पूर्वोत्तर में जहाँ भी शांति, सद्भावना, प्रेम और सहिष्णुता है, वहाँ कहीं न कहीं, किसी-न-किसी रूप में शंकरदेव उपस्थित हैं।

संदर्भ:-

1. भक्ति का विकास, डॉ मुंशीराम शर्मा, चौखंबा विद्या भवन, द्वितीय संस्करण- 1979, पृ. 309
2. उत्तरी भारत की संत परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण- 1972, पृ. 79
3. उत्तरी भारत की संत परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण- 1972, पृ. 100
4. रिलीजन ऑफ द नॉर्थ ईस्ट, महेश्वर नियोग, प्रकाशक: मुंशीराम मनोहरलाल, प्रथम संस्करण- 1884, पृ. 140
5. शंकरदेव: साहित्यकार और विचारक, डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' मदन प्रकाशन: पंजाब यूनिवर्सिटी, पटियाला 1976, पृ. 56
6. रिलीजन ऑफ द नॉर्थ ईस्ट, महेश्वर नियोग, प्रकाशक, मुंशीराम मनोहर लाल, प्रथम संस्करण, 1987, पृ. 140

ई. मेल -nkpandey65@gmail.com